हैं; **रमन्ति च**=और चिन्मय रसानन्द का आस्वादन करते हैं।

अनुवाद

मेरे शुद्धभक्त निरन्तर मेरे चिन्तन में तन्मय रहते हैं, उनके प्राण मेरी सेवा में ही अर्पित रहते हैं। परस्पर एक दूसरे को मेरी महिमा का बोध कराने और मेरी वार्ता करने में उन्हें अतुलनीय सन्तोष और आनन्द की प्राप्ति होती है—वे उसी में रमण किया करते हैं।।९।।

तात्पर्य

यहाँ जिन शुद्धभक्तों के लक्षणों का उल्लेख है, वे नित्य-निरन्तर पूर्णरूप से अनन्य प्रेममयी भगवद्भक्ति के परायण रहते हैं। उनका चित्त श्रीकृष्ण के चरणारविन्द से क्षण भर के लिये भी विचलित नहीं किया जा सकता। वे आपस में केवल भगवच्चर्चा करते हैं। इस श्लोक में शुद्धभक्तों के लक्षणों का विशेष रूप से वर्णन है। ये भक्त चौबिस घण्टे निरन्तर श्रीभगवान् के मधुर लीलारस-गुणगान में मग्न रहते हैं। उन लीलारस-लोलुपों के चित्त-प्राण निरन्तर रसराज श्रीकृष्ण में ही निमज्जित रहते हैं; अन्य भक्तों के साथ भगवच्चर्चा करने में उन्हें अनुपमेय रस का आस्वाद मिलता है।

भक्तियोग की प्रारम्भिक दशा में भक्त उस सेवा के चिन्मय आनन्द का रस लेते हैं और परिपक्व दशा में यथार्थ भगवत्प्रेम को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार शुद्ध सत्त्वमयी दिव्य अवस्था में उन्हें उस परम रस का आस्वादन सुलभ हो जाता है, जिसका प्रकाश स्वयं श्रीभगवान् अपने धाम में करते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने भक्तियोग को जीव के हृदय-प्रांगण में बीज का आरोपण करने की उपमा दी है। ब्रह्माण्ड के नाना लोकों में असंख्य जीव भटक रहे हैं। इनमें से जो दुर्लभ भाग्यवान् हैं, उन जीवों को शुद्धभक्त के आश्रय में भक्तियोग की शिक्षा पाने का सुयोग मिलता है। यह भक्तियोग एक बीज जैसा है। यदि जीव-हृदय में इसका आरोपण कर दिया जाय और वह **हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे**—इस महामन्त्र के निरन्तर श्रवण-कीर्तन रूपी जल से इसको सींचता रहे, तो वृक्ष के बीज के समान यह भक्ति-बीज भी अंकुरित हो जायगा। इससे निकली दिव्य भक्ति-लता शनैः शनैः बढ़ती हुई ब्रह्माण्डीय आवरण का भेदन कर परव्योम की ब्रह्मज्योति में प्रविष्ट हो जाती है। परव्योम में भी वह भक्ति-लता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है और अन्त में श्रीकृष्ण के परमधाम—गोलोक वृन्दावन तक पहुँच जाती है। वहाँ वह श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का आश्रय लेकर विश्राम करती है। यदि श्रवण-कीर्तन रूपी सिंचन अविराम चलता रहे, तो भक्ति-लता में फल भी लगता है। 'चैतन्यचरितामृत' में इस भक्ति-लता का विशद वर्णन है। उसके अनुसार भक्ति-लता के द्वारा श्रीभगवान् के चरणों की शरण ले लेने पर भक्त कृष्णप्रेम में मत्त हो उठता है। इस दशा में अपने प्रभु का क्षणभर का भी विरह उसके परम असह्य हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे जल के बिना मछली प्राणधारण नहीं कर सकती। इस भावाविष्ट